Year-9-10; 2018-19
ISSN–2231-1130

Impact Factor – 3.521(IIJIF)
●●●●VEETHIKA●●●

अज्ञेय का काव्य शिल्प

डॉ0 मंजरी खन्ना*

यों मै कवि हूँ आधुनिक हूँ नया हूँ
काव्यतत्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ ?
चाहता हूँ आप मुझे
एक–एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें
पर प्रतिमा– अरे, वह तो
जैसी आपको रूचे आप स्वयं गढ़ें।

अज्ञेय

एक मनस्वी, चिंतनशील, सजग, जागरूक एवं प्रतिभासम्पन्न रचनाकार कभी भी संतुष्ट नहीं होता। वह तो अनथक साहित्य के नए–नए क्षितिजों के अन्वेषण में संघर्षरत रहता है। वह इस बात की चिंता नहीं करता कि आलोचकवर्ग उसकी तस्वीर को किस चौखटे में जड़ेगा, वह तो बस निर्विकार भाव से तपस्या करता है और अपने अभियान के मार्ग में आने वाली अंधकारमय रवाइयों में बिना डरे ही कूद पड़ता है। जो भी पाता है उसे स्वयं को भट्ठी बनाकर उसमें गलाता, चमकाता है और फिर उसे 'पुष्प सा, सलिल सा, प्रसाद सा, कंचन सा, शस्य सा, पुण्य सा, अनिर्वच आह्लाद–सा' बनाकर लुटा देता है। अपने यौवन को स्वाधीनता आन्दोलन की आहुति में समर्पित करने वाले, प्रयोगशील काव्यान्दोलन के पुरोधा, सत्यान्वेषक, परम्परा और प्रयोग में नया रिश्ता बनाने वाले आधुनिक भावबोध के प्रवर्तक कवि अज्ञेय ऐसे ही तपस्वी साधक थे।

सन् 1929–1932 के दौरान रची गयी कविताओं का प्रथम संग्रह 'भग्नदूत' (1936) से लेकर 1986 में प्रकाशित 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' तक की लम्बी काव्य यात्रा अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता का सबल सम्बल पाकर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के पड़ावों को पार करती हुई नई कविता तक पहुँची। यह सर्वविदित है कि छायावाद के रंगीन कल्पना वैभव ने, सूक्ष्मता और कोमलता ने, समाजनिरपेक्षता ने प्रगतिवादी काव्यधारा को जन्म दिया। प्रगतिवाद जब शोषकों के उत्पीड़न और अन्यायों, अनाचारों का तथा शोषितों के दुःख दर्द और संघर्षो का चित्र खीचतें–2 थक गया तब अज्ञेय ने प्रथम तारसप्तक का प्रकाशन कर, नई राहों के सात अन्वेषियों के साथ साहित्य जगत में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई। सप्तक की भूमिका में बार–बार 'प्रयोग' शब्द का प्रयोग किये जाने के कारण समीक्षकों ने इसे 'प्रयोगवाद' नाम दे दिया। नवानुभूति सम्पन्न इन सात जीवन–सत्यों को नई संवेदनाओं को, विज्ञान और यांत्रिकता के दबाववश उपजी संभावित युद्ध की आंशका को, मृत्यु के भयवश उत्पन्न असहायता और निरर्थकता को मानवीय अर्थ दिया, वही दूसरी और सफल अभिव्यक्ति के लिए नवीन शिल्प के गठन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। नए–नए शिल्पगत प्रयोग कर काव्य जगत में क्रान्ति सी ला दी।

प्रयोगवादियों का मानना था कि 'जीवन की भॉति काव्य भी एक चिर गतिशील सत्य है जिसकी वास्तविक साधना शोध, अन्वेषण एवं प्रयोग है। अतैव वस्तु और शैली दोनों ही के क्षेत्र में ये काव्य के पूर्ववर्ती उपादानों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और नवीन उपकरणों को आग्रहपूर्वक ग्रहण करतें हैं''। चूँकि अज्ञेय इस धारा के पुरोधा थे अतः उनमें शैली–शिल्प के क्षेत्र में प्रयोग का उत्कट आग्रह देखने को मिलता है। अज्ञेय का मानना था कि जो व्यष्टि का अनुभव है उसे समष्टि तक कैसे पहुँचाया जाये, यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है। अज्ञेय ने कविता में संप्रेषण को ,संप्रेषण की परिस्थितियों से अधिक महत्व दिया है। वे जानते थे कि सम्प्रेषण की स्थितियों को समझे बिना काव्य का मूल्यांकन तो दूर, सही अर्थ ग्रहण भी नहीं किया जा सकता। द्वितीय तारसप्तक की भूमिका में साधारणीकरण के सिद्धान्त का पालन न करने के आरोप का उत्तर देते हुए अज्ञेय ने स्पष्ट लिखा है–''वे न केवल इस सिद्धांत को मानते हैं वरन् इसी से प्रयोगों की आवश्यकता भी सिद्ध करते हैं। यह मानना होगा कि सभ्यता के विकास के साथ–साथ हमारी अनुभूतियों का क्षेत्र भी विकसित होता गया है और अनुभूतियों को व्यक्त करने के हमारे उपकरण भी विकसित होते गये हैं। यह कहा जा सकता है कि हमारे राग–विराग नहीं बदले–प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा, यह साधारणतया स्वीकार किया जा सकता है। पर यह भी ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों की प्रणालियाँ बदल गयी हैं और कवि का क्षेत्र रागात्मक सम्बन्धों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है''। प्रगतिवादियों ने महसूस किया कि वास्तविकता से सत्य से जुड़ने के लिए यह परिवर्तन आवश्यक है और इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने नवीन शिल्प का निर्माण किया ।

अज्ञेय ने भाषा के प्रश्न पर बहुत गहराई से विचार किया है। अज्ञेय ने 'आत्मनेपद' में एक स्थान पर लिखा है कि अच्छी भाषा अपने आप में एक सिद्धि होती है और वो ऐसी भाषा का सदा सम्मान करते हैं। आगे उन्होंने स्पष्ट किया है कि अच्छी भाषा से उनका अभिप्राय अलंकरण या चमत्कार से नहीं वरन् भाषा और अनुभूति के अद्वैत को स्थापित करने से है और उनके अनुसार यह अद्वैतता शब्दों के उचित और सार्थक प्रयोग पर आधृत

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

है। उन्होंने तारसप्तक मे लिखा भी है– ''काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि–कर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृतिकार बनाती है। ध्वनि, लय, छन्द आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकले हैं और इसी में विलय होते हैं।' अज्ञेय ने शब्दों के महत्व पर अपनी रचनाओं में अनेंकानेक विचार व्यक्त किए हैं। 'शब्द' नामक कविता में अज्ञेय ने कवियों के तीन वर्गो का उल्लेख कर शब्दों के महत्व को बड़े ही रोचक अन्दाज में अभिव्यक्त किया है। पहला वर्ग ऐसे कवियों का है जो शब्द को कंकणवत् मानते हैं और 'कूट लो, पीस लो, छान लो, डिबियों में डाल दो, थोड़ी सी सुगन्धि दे कर, कभी किसी मेले के रेले में कुंकुम के नाम पर निकाल'' देते है। दूसरा वर्ग शब्दों का सोच समझकर प्रयोग करता है चूँकि उसके लिए शब्द सीपीवत् होते है। तीसरा वर्ग, जिसके प्रतिनिधि स्वयं अज्ञेय थे, शब्दों को नैवेद्य की भाँति अनुभूति की अभिव्यक्ति का सबसे पवित्र साधन मानता है– ''किसी को शब्द नैवेद्य, थोड़ा सा प्रसादवत्, मुदित, विभोर, वह पाता है।'' सत्यान्वेषक अज्ञेय का मानना था कि यदि 'शब्द' काव्य है तो 'सत्य' उसका प्रयोजन है। इसीलिए उन्होंने आजीवन शब्द और सत्य को मिलाने का ही प्रयास किया–

ये दोनों जो
सदा एक दूसरे से तन कर रहते हैं,कब, कैसे, किस आलोक स्फुरण में
इन्हें मिला दूँ–
दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर सहचर मेरे।

अज्ञेय शब्दों के अहेरी भी थे, सन्धाता भी और स्रष्टा भी। छायावादियों ने जहाँ भाषा की अर्जित संपत्ति को महत्व दिया वही अज्ञेय ने भाषा में, शब्दों में निहित सर्जनशीलता को पहचान कर नए सिरे से उसका संस्कार किया। प्रयोगवाद के जन्मकाल के समय उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि आज का कवि भाषा की बहुत बड़ी समस्या से जूझ रहा है वह भाषा की क्रमशः संकुचित होती सार्थकता की केंचुली फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है। अज्ञेय ने स्वयं भी अनुभूतिगत सत्य को सहृदयों में ज्यों का त्यों उतराने के लिए परम्परागत शब्दों को नई अर्थ चेतना से दीप्त कर नए–नए शब्दों का निर्माण किया। जैसे–मेघाली, उन्नीत, लालियाँ, ललाकार, ललाती, झोंप, अंधियाला, लताली, लकदक, गुजलकें, दिपते, मनिमारी, अनुकूलों, आत्मता, प्रखरा, कुरमुराता, न्यौतती, बुदकती, लहरिल, मतियाया आदि।

अज्ञेय का शब्द चयन कौशल सराहनीय हैए मुँहझौंसी चिमनियाँ, हवा कटखनी, न्हाई कुई, अमुखर नारियाँ, पिपियाते पंछी, नंगी डाकिनी, रासायनिक साँपिने, पर्वती गाँव, कज्जल–पुता जैसे प्रयोग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है अज्ञेय ने निःसंकोच जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ी भाषा का व्यवहार किया है। श्रम के महत्व को बताने वाली भाषा की अनूठी सर्जना बानगी रूप में प्रस्तुत है–

यह जो कीचड़ उलीचता है,
यह जो पापड़ बेलता है, बीड़ी लपेटता है, वर्क कूटता है, धौंकनी फूँकता है, कलाई गलाता है, रेढ़ी ठेलता है, चौक लीपता है, बासन भांजता है, ईटें उछालता है, रूई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है।

अज्ञेय की आरम्भिक रचनाओं भग्नदूत, चिंता, आदि में छायावाद से प्रभावित माधुर्यगुण युक्त तत्सम् प्रधान कोमलकान्त शब्दावली प्रयुक्त हुई है। उदाहरणार्थ–

इसी में उषा का अनुराग
इसी में भरी दिवस की श्रान्ति
इसी में रवि की सान्ध्यमयूज
इसी में रजनी की उद्भ्रान्ति।

कालान्तर में 'हरी घास पर क्षण भर' में संग्रहीत कविताए ं भाषा की नई भाव –भंगिमा लेकर उपस्थित हुई। 'कलगी बाजरे की' कविता में शब्दों का नया संघटन, नया सौन्दर्य देखते ही बनता है। अज्ञेय बहुअधीत थे, उनका ज्ञान क्षेत्र अति विस्तीर्ण था। अतः तत्सम्, तद्भव, देशज, लोकभाषा के शब्दों का संश्लिष्ट प्रयोग कर उन्होंने भाषा को एक नया आयाम दिया। डा0 राम स्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार ''काव्यभाषा के प्रसंग में अज्ञेय की जागरूकता, वैचारिक और रचनात्मक दोनों स्तरों पर दिखाई देती हे। नदी के द्वीप कविता की भाषा में जो प्रवाह, वैचारिक तत्व, शब्द प्रयोग एवं प्रतीक हैं अपनी शक्ति से पाठक को अभिभूत कर लेते हैं।''

द्वीप हैं हम
यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।
वह वृहद् भूखण्ड से हमको मिलाती है।
और वह भूखण्ड अपना पितर है।

अज्ञेय की काव्य भाषा की शक्ति का प्रमुख स्त्रोत तद्भव शब्दावली है। 'बावरा अहेरी' और उसके उपरान्त लिखी कविताओं में तद्भव और देशज शब्दों के प्रति बढ़ते लगाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। इससे भाषा में अद्भुत सहजता और स्वाभाविकता आ गयी है। अज्ञेय जानते थे कि देसी और बोलचाल की शब्दावली ही जनजीवन से जुड़ाव का सर्वाधिक सफल माध्यम है। तद्भव शब्दावली से निर्मित 'बाँगर और खादर' नामक कविता का यह शब्द बिम्ब देखते ही बनता है –

गाँवों में गवाँर
उसी में नहाते हैं,
कपड़ा भीचतें है, आचमन करते हैं,

डाँगर भँसाते हैं,
उसी से पानी उलीच पहले सींचते है
और जो मर जाये उसकी मिट्टी भी, वहीं होनी बदी है।

कविता को परिवेश से जोड़ने के लिए अज्ञेय ने जहाँ एक और ठेठ देसी बोलचाल की भाषा का व्यवहार किया है वहीं दूसरी ओर उर्दू अंग्रेजी के शब्दों के बेझिझक, बेहिचक प्रयोग का जोखिम भी उठाया है–

पार्क की बैंच
उजड़ा सूनसान पार्क
उदास गीली बेंच।
तथा
इस पर्वती गाँव में
छोटी से छोटी चीज की भी दरकार है
आज की भूख बेबसी की
बेमुरव्वत मार है।

अज्ञेय की काव्य भाषा का अध्ययन करने के उपरान्त हम चतुर्वेदी जी के शब्दों में कह सकते हैं कि –''अज्ञेय की कविता भाषा में अर्थक्षमता का मूल स्त्रोत तद्भव शब्दावली है। तद्भव शब्दावली वह आदर्श सन्तुलन की स्थिति है जो तत्सम्, विदेशी, लोक प्रचलित या कि देशज शब्दों से भी अलग पर उनके केन्द्र में से उभरती है और यही अज्ञेय की काव्य भाषा की सृजनामकता का मूल रहस्य छिपा है।''

अज्ञेय मौन के अनन्य साधक थे। संप्रेषणीयता के लिए आवश्यक है कि कवि नई व्यंजना का आश्रय ले और अज्ञेय साहित्य में यह नई व्यंजना है– मौन का विभावन। मौन के महत्व को स्वीकरते हुए अज्ञेय लिखते है–

एक मौन ही है जो अब भी
नयी कहानी कह सकता है
इसी एक घट में नवयुग की
गंगा का जल रह सकता है।

मौन को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना अज्ञेय की मौलिक अवधारणा है। उनका मानना था कि कवि शब्दों का ही अर्थगर्भ उपयोग नहीं करता वरन् अर्थगर्भ मौन का भी उपयोग करता हैं। डा0 नामवर सिंह ने अज्ञेय की इस मौन साधना के संदर्भ में कहा है'' काव्य भाषा विषयक 'मौन' के चरम दर्शन पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा जिसे अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' जैसी कविताओं में अत्यन्त सफलता के साथ व्यक्त किया है।'' जब कवि को लगता है कि वह भाषा द्वारा अपने को वाणी देने में अक्षम है तब वह मौन का आश्रय लेकर कहा अनकहा सब कह देता है।

शब्द, यह सही है, सब व्यर्थ है
पर इसीलिए कि शब्दातीत कुछ अर्थ है।
शायद केवल इतना हीः जो दर्द है
वह बड़ा है, मुझसे ही सहा नहीं गया।
तभी तो, जो अभी और रहा, वह कहा नहीं गया।''

अज्ञेय ने शब्दो से परे जाकर घोषित किया कि शब्दों में मेरी समायी नहीं होगी मैं सन्नाटे का छन्द हूँ। अज्ञेय के साहित्य में मौन विराट का ही एक रूप है–

यह महाशून्य का शिविर, असीम, छा रहा ऊपरः
नीचे यह महामौन की सरिता
दिग्विहीन बहती है।

विराट तत्व की अनुभूति और उस अनुभूति में वाणी का लय हो जाना ही मौन की साधना है। अज्ञेय ने अपनी मौन सम्बन्धी मान्यताओं का वर्णन 'आलबाल' में किया है। उनके अनुसार सही शब्द वे ही हैं जो दो शब्दों के बीच के अन्तराल का सर्वाधिक उपयोग कर –अन्तराल के उस मौन द्वारा अर्थवत्ता का पूरा ऐश्वर्य सम्प्रेषित कर सके। उनका मानना था कि कविता भाषा में नहीं होती वह शब्दों में भी नहीं होती वरन् कविता शब्दों के बीच की नीरवताओं में होती है। यथा–

एक झरा पत्ता
फिर एक दूसरा और झरा
फिर एक–हाय।

यहाँ 'एक' और 'हाय' के मध्य स्थित मौन जीवन की नश्वरता, क्षणभुंगरता को जिस रूप में व्यंजित करता है वह अनुपम है।

अज्ञेय प्रतीकों एवं बिम्बों के कवि है। उनकी मान्यता थी कि 'कोई भी स्वस्थ काव्य साहित्य प्रतीकों की, नए प्रतीकों की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बन्द कर देता है तो जड़ हो जाता है।'' बदलते परिवेश में नवीन जीवन सत्यों, नई भावानुभूतियों को अभिव्यक्ति देने में अज्ञेय ने जब पुराने प्रतीकों को असमर्थ पाया तो 'कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता हैं' कहकर उनका साथ छोड़ दिया और अपने बुद्धि कौशल से नए–नए प्रतीकों की सर्जना कर सबको चमत्कृत कर दिया। इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने परम्परागत प्रतीकों का पूरी तरह तिरस्कार किया। सच तो यह है कि उन्होंने परम्परा से प्राप्त पुराने पर जीवन्त प्रतीकों का खुलकर प्रयोग किया है साथ ही पुराने प्रतीकों को नई अर्थ चेतना से संपृक्त कर अपने कलात्मक कौशल का परिचय भी दिया है।

डॉ0 राम विलास शर्मा ने एक स्थान पर लिखा है कि ''छायावाद के औपचारिक रूप सें दिवंगत हो जाने के बाद जिस कवि ने छायावादी भावधारा को हिन्दी काव्य भूमि में सबसे अधिक प्रवाहित किया है वह हैं अज्ञेय।'' अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में अज्ञेय ने छायावादी भावधारा में पनपे प्रतीकों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ –

1–तेरी ऑखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूँ (मद–प्रेम रस)

2–तम का पट घन काला (तम –निराशा)

3–प्राण अगर निर्झर से होते, पृथ्वी सा यह मेरा जीवन (निर्झर–प्रेमी, पृथ्वी– प्रेमिका)

4–कल आरक्त लता फूली थी पत्ती आज झड़ी (लता–देह), इसी प्रकार झरता पत्ता (नश्वरता), मधुप (प्रेमी), झील (रोमांस), कपाट (हृदय), पर्वत (ईश्वर), चातक (मन), रेत (सारहीनता), नदी (चेतना), महाशून्य (परमसत्ता), बूंद (मानव), सागर (जगत) जैसे प्रतीकों का प्रयोग अज्ञेय ने खुलकर किया है।

अभिव्यक्ति को सघनता और तीव्रता प्रदान करने के लिए, संवेदनाओं को पूरी ईमानदारी और स्वाभाविकता के साथ व्यक्त करने लिए अज्ञेय ने नए प्रतीक रचे हैं। प्रेयसी के रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में जब उन्होने 'सॉझ के नभ की अकेली तारिका' 'टटकी कली चम्पें की' को छोटा पाया तो अपने बुद्धि कौशल से प्रकृति प्रांगण से जनजीवन से जुड़े दो सर्वथा नए उपमान चुन लाए, 'हरी बिछली घास' और 'दोलती कलगी छरहरी बाजरे की'। आभिजात्य की अस्वीकृति तथा घास और बाजरे के पौधे जैसे सामान्य का ग्रहण भले ही अटपटा लगे परन्तु इन उपमानों में अर्थ का जो नयापन है, गहराई है, विस्तार है, वह एक प्रेमी हृदय ही समझ सकता है। प्रतीक प्रयोग की दृष्टि से 'हरी घास पर क्षण भर' 'जब पपीहे ने पुकारा' 'सो रहा है झोंप' 'कलगी बाजरे की' शीर्षक कविताएं विशेष महत्व रखती हैं।

काव्य जगत में पतिंगा प्रेमियों का आदर्श रहा है परन्तु अज्ञेय ने 'पार्क की बेंच 'शीर्षक कविता में पंतिगों को गरीब निराश्रित एवं निर्वसन व्यक्तियों का प्रतीक माना है। सूर्य सदा से ज्ञान का, प्रकाश का, तेज का प्रतीक माना जाता रहा है परन्तु अज्ञेय ने 'हिरोशिमा' शीर्षक रचना में सूर्य की दाहकता, ज्वलनशीलता को ध्यान में रखते हुए सूर्य को अणुबम जैसे सर्वथा नवीन अर्थ में प्रयुक्त किया है।

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बनाकर सोख गया
पत्थर पर लिखी हुई यह जली हुई छाया
मानव की साखी है।

इतना ही नहीं हिरोशिमा में अणु विस्फोट के उपरान्त जब सम्पूर्ण विश्व पर रासायनिक युद्ध की आशंका का बादल मंडराने लगा तब अज्ञेय ने कुछ वैज्ञानिक प्रतीकों के माध्यम से उस युद्ध की विनाशक स्थिति का जो बिम्ब उतारा वह अपने आप में अद्भुत है, अनूठा है––

झुलसते आकाश के बादलों को जलाकर
शून्य में भी रिक्तता का एक जुम्हाता विविर बनाकर
जब वे चले जायेंगे तब अंत में एक दिन
रासायनिक सांपिने पछाड़ खाकर धरती पर गिरेंगी।
विषैले धुँए की गुंजलकें खुल जायेंगी।

हारिल दृढ़ प्रेम का परम्परागत प्रतीक है। 'हिय–हारिल' की 'कीर' शीर्षक कविता में हारिल विरही प्रेमी रूप में प्रयुक्त हुआ है तो 'उड़ चल हारिल' में हारिल कवि की अपनी आशा और पुरुषार्थ का प्रतीक बनकर सामने आया है–

आज उसी ऊर्ध्वंग ज्वाल का
तू है दुर्निवार हरकारा
दृढ़ ध्वज–दंड बना यह तिनका
सूने पथ का एक सहारा।

इसी प्रकार 'तीसरा पक्षी' शीर्षक कविता में हारिल स्वाभामानी और कर्मठ व्यक्ति का, क्रौंच साधक एवं अन्वेषक का तथा तीसरा पक्षी उद्देश्यहीन व्यक्ति के प्रतीक रूप में वर्णित हुआ है।

'असाध्य वीणा,' 'बावरा अहेरी' 'नदी के द्वीप' 'इतिहास की हवा' 'मरू और खेत' सुन्दर प्रतीकात्मक रचनाएँ है। 'असाध्य वीणा' में वीणा ब्रहम सत्ता का और प्रियंवद साधक का प्रतीक है, इस कविता में सूक्ष्म अति सूक्ष्म तथा विराट बिम्ब देखने को मिलता हैं।

'बावरा अहेरी' में अहेरी सृष्टि के जीवन स्त्रोत सूर्य का प्रतीक है। इस कविता में आदिम प्रकृति और आस्था के प्राचीन प्रतीकों से लेकर वर्तमान सभ्यता के प्रतीकों का समाहार है। अज्ञेय ने यहाँ आत्मशुद्धि की आकांक्षा से मन में दुबकी कलौंस को माँजने की इच्छा से विराट से जुडने की कामना की है। अज्ञेय के जीवन दर्शन पर आधारित कविता 'नदी के द्वीप' में नदी व्यक्ति का तथा द्वीप समाज का प्रतीक बनकर उपस्थित हुआ है। 'इतिहास की हवा' में प्रतीकों द्वारा वर्तमान समाज की विसंगतियों, विकृतियों को दर्शाया गया है। इस कविता में एकलव्य असभ्य जातियों का, द्रोणाचार्य वर्तमान नेताओं का, राजहंसमाला विवेक बुद्धि का और भैंस आधुनिक अज्ञान तथा पाश्विक प्रवृत्तियों का प्रतीक बनकर आये हैं। 'मरू और खेत' में मरू सृजन क्रिया के विरोधी व्यक्ति का और खेत सृजनरत व्यक्ति का प्रतीक है।

'सोन मछली' अज्ञेय की सर्वाधिक चर्चित और विवेचित कविता है। प्रसिद्ध समालोचक राम विलास शर्मा ने तो अज्ञेय को इस कविता के आधार पर रूपवादी तक सिद्ध कर दिया है। ''वस्तुतः अपने बिम्ब में स्पष्ट एवं सचित्र होने के बावजूद व्याख्या की दृष्टि से यह कविता जटिल और अनिश्चित रही है। काँच के पीछे हाँफती हुई मछली, रूप की तृषा, जिजीविषा के अनेक सन्दर्भ के मध्य अर्थ को पकड़ पाना चुनौती पूर्ण काम हो गया है। प्रबुद्ध पाठक अनुमान के सहारे कुछ शब्दों प्रतीकों को पकड़कर इसमें अर्थ की सृष्टि करता है– प्राकृतिक जीवन की

प्रतीक मछली काँच की टंकी में बंद है यानी उन्मुक्त प्रकृति आज की सभ्यता की जटिलता में आबद्ध है। यहाँ मानव निर्मित व्यवस्था का सौन्दर्य है–काँच में मछली पालने का शौक और दूसरी ओर मछली की जिजीविषा है।'' अर्थ की इसी अनिश्चितता और दुरूहता को दूर करने के लिए अज्ञेय ने 'आत्मनेपद' में कविता का गूढ़ार्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है– कि जीवन स्वप्नों और आकारों का रंगीन और विस्मयभरा पुँज है। हम चाहे तो उस रूप में ही उलझे रह सकते हैं किन्तु रूप का यह आकर्षण भी वास्तव में जीवन के प्रति हमारे आकर्षण का ही प्रतिबिम्ब है। जीवन के प्रति आकर्षण अर्थात जिजीविषा।

जहाँ छायावादी अपनी काम भावना दबे छिपे शब्दों में व्यक्त करता था वहीं नई चेतना का कवि अज्ञेय खुलेआम कहता हैं–

आह मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार–
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो, नारी?

ऐसी बेलाग उक्तियों के कारण ही आलोचक नगेन्द्र ने एक स्थान पर कहा है

'इनमें से अधिकांश कवियों की प्रवृत्ति ए कान्त अन्तर्मुखी है वे और अपने मन की निविड़ताओं में उलझे हुए है–सबसे अधिक अज्ञेय। मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रभाववश अवचेतन का अध्ययन इनकी कविता का मुख्य विषय है। अवचेतन की काम कुंठाओं का प्रतीकों द्वारा यथा–तथ्य चित्रण अज्ञेय और गिरजाकुमार में अत्यन्त स्पष्ट है।'' अज्ञेय का मानना था कि आधुनिक मनुष्य यौन वर्जनाओं का पुंज है। वह यौन की दमित और कुंठित कल्पनाओं से लदा हुआ है। उसकी इन्हीं दमित वासनाओं का वर्णन प्रतीकों के माध्यम से अज्ञेय ने 'सावन मेघ' कविता में किया है–

घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका सा विषद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नीलवक्ष वज्र सा,

यहाँ मेघ कामातुर नायक और भूमि कामातुर नायिका का प्रतीक है। इसी प्रकार 'कलगी बाजरें' का यह उदाहरण देखिए –

सो रहा है, झोंप अंधियाला नदी की जाँघ पर :डाह से सिहरी हुई यह चाँदनी
चोर पैरों से उझक कर झाँक जाती है।

यहाँ अंधकार प्रेमी का, नदी प्रेमिका और चाँदनी उपनायिका का प्रतीक बनकर उपस्थित हुई है। नदी की जाँघ पर अँधकार के सोने और चाँदनी द्वारा चोरी–चोरी देखने में यौन बिम्ब भी सक्रिय होती है।

डॉ0 शिवदान सिंह चौहान ने अज्ञेय पर पश्चिम के प्रतीकवाद को भारत में लाने का आरोप लगाते हुए लिखा है कि ''प्रयोगशीलता की ओट में अज्ञेय प्रतीकवादी विचारधारा को साहित्य में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करते रहे है उनकी कविता प्रतीकवादी है। ''इसके जवाब में रमेश ऋषिकल्प जी ने लिखा है कि 'अज्ञेय मलार्मे, ब्रॉदलेयर आदि प्रतीकवादियों की उन सभी मान्यताओं से सहमत नहीं हैं जिन्हें पश्चिम के प्रतीकवादी मानते है। मिसाल के तौर पर मलार्मे जैसे प्रतीकवादी घोर अस्पष्ट और आसानी से संप्रेषित न होने वाले प्रतीकों के इस्तेमाल में यकीन रखते थे लेकिन अज्ञेय इस बात से कभी सहमत नहीं हुए। उन्होने तो सदा यही माना है कि प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण हैं जो अर्थ सीधे, सादे अभिधा में नही बँधता, उसे आत्मसात् करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते है। 'सोन मछली' जैसी कुछेक प्रतीकों को छोड़ दिया जाए तो ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा कि अज्ञेय ने सदा ही अस्पष्ट अनुभूतियों को स्पष्ट करने के लिए ही प्रतीक रचे हैं। उनकी प्रतीक योजना पाश्चात्य प्रतीकवाद पर नहीं वरन् संस्कृत साहित्य और लोक साहित्य की सुदृढ भित्ति पर टिकी है।

अज्ञेय साहित्य में मिथकीय सम्पदा भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। मिथक काव्य भाषा को चित्रधर्मी बनाता है। अज्ञेय का मानना है कि मिथक समाज और व्यक्ति दोनों के लिए, संस्कृति के लिए भी सदैव एक दुर्दम शक्ति का स्त्रोत होते है। अज्ञेय ने इस शक्ति का भरपूर उपयोग किया है। उनकी मिथकीय संचेतना संस्कृति बोध पर आधारित है। अज्ञेय ने पर्वत,सागर,नदी,सन्नाटे के मिथकीय महत्व को अपनी कविताओं में उजागर किया है। इस दृष्टि से 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' नन्दादेवी सीरीज की कविताएँ, नदी का बहना आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'सागर मुद्रा' का उदाहरण दृष्टव्य–

लहर पर, लहर पर लहर
कहाँ है संगीत,
जिसके लिए प्रजापति की वीणा काँपी,
वह अमृत
जिसके लिए सुरो–असुरों ने तुझे मथा?

अज्ञेय साहित्य में प्रेमाधारित 'विश्वप्रिया' कविता में अज्ञेय ने नर–नारी के प्रणय सम्बन्धों की चिरन्तनता को 'ए डम' और 'ईव' के आख्यान द्वारा व्यक्त किया है–

आओं एक खेल खेलें
मैं आदिम पुरूष बनूँगा, तुम पहली मानव बधुका।

विश्वप्रिया (चिरन्तन नारीत्व) छाया की भाँति, कवि (प्रथम पुरूष) की चेतना में निरन्तर विद्यमान रहती है। धूलिकण के समान वह सम्पूर्ण विश्वमण्डल में व्याप्त होने की

क्षमता रखती है। अज्ञेय ने 'द्रौपदी के पट ' और 'वामन की माँग' जैसे मिथकीय प्रतीकों का प्रयोग कर उक्त व्याप्ति को मूर्तरूप दिया है–

और वह धूलिकण
द्रौपदी के पट जैसा वारिधि के तट जैसा
वामन की माँग सा अनन्त,
भूख की पुकार सा दुरन्त
बढता चला गया –
व्योम भर छा गया।

अज्ञेय ने 'नर और नारायण' कविता में मिथक का प्रयोग कर नर और नारायण के सम्बन्धों को आधुनिक सन्दर्भ में परखने का प्रयास किया है। भारतीय परम्परा में भक्त भगवान से मुक्त होना नहीं चाहता वरन् वह सदा ईश्वर की भक्ति चाहता है। अज्ञेय का नर भी क्षमा नहीं चाहता ।

ईश्वर का सान्निध्य सुख चाहता है–
न दो क्षमा। उसके बन्धन मत खोलो!
बँधा हुआ वह कितना समीप है
कितना डूबा–
साईं की छाया में।

'इतिहास की हवा' में एकलव्य और द्रोणाचार्य के मिथक का प्रयोग कर अज्ञेय ने पतनशील नैतिकता का नग्न और भयावह रूप खींचा है। महाभारतकालीन द्रोण तो शिष्य एकलव्य का अँगूठा माँग कर संतुष्ट हो जाता है परन्तु आज का द्रोण तो एकलव्य द्वारा खोदे गए कुँए से निकाले गए अमृतजल में भाँग मिलाकर सम्पूर्ण समाज का विनाश कर रहा है–

अभिनव द्रोण किन्तु कहता हैः
वत्स,वीर
धरो चाप, साधो तीर, धरती को बिद्ध करो–

अमृत–सा कूप जल यही फूट निकले और फिर चुपके से एकलव्य के नये कुँए में भाँग डाल देता है। 'परती का गीत' में अहिल्या की कथा का, 'मथो' और 'स्वरस विनाशी' कविता में समुद्र मंथन की पौराणिक कथा का, 'देवासुर' शीर्षक कविता में देवासुर संग्राम के पौराणिक आख्यान का आधार ग्रहण किया गया है। अज्ञेय ने भारतीय ही नहीं वरन् विदेशी मिथकों का भी प्रयोग किया है। 'चक्रान्त शिला' कविता में दक्षिण फ्राँस के पिए र–क्वि–वीर' मठ का इतिहास छिपा है। चक्रान्त शिला अर्थात घूमने वाला पत्थर एक आवर्ती काल का सशक्त प्रतीक है। इस कविता में सृष्टि मिथक और काल के मिथकीय स्वरूप का वर्णन हुआ है। सृष्टि मिथक का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

न कुछ में से वृत्त वह निकला कि जो फिर
शून्य में जा विलय होगाः
किन्तु वह जिस शून्य को बाँधे हुए है–
उसमें एक रूपातीत ज्योति है।

काल मिथक की दृष्टि से 14,18,19 कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चक्रांत शिला की 12 कविता में निर्गुण सन्तों की भाँति आत्मा और परमात्मा के मिलन का रूपक बाँधा गया है–

अरी ओ आत्मा री
कन्या भोली क्वांरी,
महाशून्य के साथ भाँवरे तेरी रची गयी।

अज्ञेय ने बड़ी सजगता और कलात्मकता के साथ मिथकों का बिम्बधर्मी और प्रतीकात्मक उपयोग कर अपने परिवेश और परिदृश्य की नयी ढ़ंग से व्याख्या की है।

जहाँ तक छन्द योजना का प्रश्न है अज्ञेय ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में परम्परागत छन्दों जैसे – बरवै, सरसी ताटंक, रोला मालिनी, जैसे छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने कतिपय मिश्रित छन्दों जैसे सार और सरसी, सार और हरिगीतिका, तीर और ताटंक, दण्डी और पीयूषवर्ष, रूचिरा और कुंकुम का कौशलपूर्ण प्रयोग भी किया हैं। अज्ञेय ने कुछ नये छंदो को भी गढ़ा है। 'इन्द्र धनुष रौंदे हुए ये' में 35 मात्राओं के छन्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार 40 मात्राओं और अन्त में मगण (sss) तथा प्रत्येक चरण में एक मात्रा बढ़ने वाले छन्द का नवीन प्रयोग भी किया है। बालेन्दु शेखर तिवारी ने ऐसे छन्दों को 'अज्ञेय छन्द' का नाम दिया है। परन्तु सच तो यह है कि अज्ञेय की रूचि मुक्त छन्द के प्रणयन में अधिक रमी है।

अज्ञेय टेनीसन की लयात्मक सम्बन्धी अवधारणा से अत्यधिक प्रभावित थे उनका मुक्त छंद भी लयाधारित था। उनकी लयचेतना पारम्परिक छन्दों के आधार पर किये गये प्रयोगों से लेकर नयी भूमि का निर्माण करने तक विस्तृत है अज्ञेय ने कविता की लय को संगीतात्मकता से भी मुक्त करते हुए भाषा की अपनी अन्तर्निहित लय को महत्व प्रदान किया जिससे कविता जीवन की लय पकड़ने में समर्थ बनी–

मैने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर के आग से :
रंग गयी क्षण भर
ढ़लते सूरज की आग से।

हम कह सकते है कि अज्ञेय की कविता की पूरी संरचना बोलचाल की लय में निबद्ध है अज्ञेय गम्भीर से गम्भीर विचार को भी बोल चाल की लयमें ढ़ालकर अद्भुत प्रभावशाली बनाने की कला में माहिर थे। 'मरू और खेत' का एक उदाहरण देखिए जिसमें संवादात्मकता, नाटकीयता और लयात्मकता का अनूठा मिश्रण है–

मरूबोलाः
हाय यह हास्यास्पद ममता!

ओ रे खेत–किस हेतु यह यत्न, यह उथल– पुथल
यह–कह ही डालूँ – आडम्बर?
हँसा खेतः मरू काका, ठीक है होगा वही
लू बहेगी, पाला भी पड़ेगा, दुःख होगा ही किन्तु–
नव सर्जन में जो
अपने को होम कर होते है आनन्दमग्न
उनकी तो दृष्टि और होती है।

अज्ञेय लय को अपने काव्य और काव्य विचार में ही नहीं वरन् अपने निजी जीवन में भी अत्यधिक महत्व देते थे। विद्यानिवास मिश्र के शब्दों– बस एक झक है कि जितनी चीजें आस–पास रहें उनकी लय मिली रहे। लय मिलानें में जैसी परेशानी में स्वयं पड़ते और दूसरों को डालते देखा है, उसके ऊपर हँसी भी आती है, खीझ भी होती है, पर जानता हूँ कि यह अज्ञेय का स्वभाव है।

जापानी छंद हाइकू के हिन्दीकरण का श्रेय भी अज्ञेय को जाता है। अप्रैल सन् 1957 से जनवरी सन् 1958 तक जापान प्रवास के समय जापानी संस्कृति ने ही नहीं वरन् वहाँ की खूबसूरत प्रकृति ने, असीम सागर ने और जीवन दृष्टि ने भी संवेदनशील अज्ञेय को रागदीप्त काव्यानुभवों की छवियों से आलोकित किया। इस दौरान अज्ञेय ने जापानी छंद हाइकू का अनुवाद ही नहीं किया वरन् उससे प्रेरित होकर हिन्दी में जो मिताक्षरी कविताए लिखीं उन्होंने कालान्तर में हिन्दी, काव्यजगत में हाइकू लिखने की परम्परा की नींव डाली। धूप शीर्षक कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है।

धूप
सूप–सूप भर
धूप कनक
यह सूने नभ में गई बिखर :
चौंधाया
बीन रहा है
उसे अकेला एक कुरर।

हाइकू का आधार होता है प्रकृति के किसी दृश्य अथवा घटना के क्षण विशेष से तदाकार होना, उसमें अर्थ पाना और इस अनुभूति की तत्काल सादगी पूर्ण अभिव्यक्ति। मात्र पॉच शब्दों में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की इतनी सुन्दर, सारगर्भित और विम्बधर्मी व्याख्या अज्ञेय जैसा कलाकार ही कर सकता था–

ताल पुराना
कूदा दादुर
गुडुप

निश्चय ही अज्ञेय का काव्य शिल्प मौलिक है। उसमें सच्चे कलाकार की शिल्पगत अनुभूति और परिपक्वता मिलती है। जैसे किसान भूमि तोड़ता है वैसे ही अज्ञेय ने परम्परा को तोड़कर काव्य–शिल्प की जो नई फसल तैयार की वह आज भी लहलहा रही है। उसमें जो नयापन है, सादगी है, विशिष्टता है, अनूठा पन है, सहजता है, वही अज्ञेय की वास्तविक पहचान है। सच कहें तो उनकी कलात्मक कारीगरी लाख विरोधों के बाद भी आधुनिक हिन्दी कविता का प्रतिमान बन गयी । अज्ञेय शब्दों के जादूगर थे और उनका समूचा काव्य–शिल्प उनकी इसी जादूगिरी का बेशकीमती नमूना है।

संदर्भ सूची–

1. छंद है यह फूल–नया कविः आत्मस्वीकार–सं0 कृष्णदत्त पालीवाल पृ031
2. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये– क्योंकि तुम हो– अज्ञेय– पृ0 46,47
3. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ– नगेन्द्र –पृ0–114,–118
4. द्वितीय तार सप्तक– सं0 अज्ञेय –भूमिका– पृ0 8
5. तारसप्तक– सं0 अज्ञेय –पुनश्च–पृ0 243
6. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये– शब्द–अज्ञेय
7. छंद है यह फूल –शब्द और सत्य–सं0 कृष्णदत्त पालीवाल पृ0– 124
8. छंद है यह फूल – मैं वहाँ हूँ –अज्ञेय – पृ0 109
9. भग्नदूत – अपना गान – अज्ञेय
10. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या – रामस्वरूप चतुर्वेदी
11. छंद है यह फूल –नदी के द्वीप –सं0 कृष्णदत्त पालीवाल– पृ0 65
12. वही– बाँगर और खादर– पृ0 132
13. पूर्वा –पार्क की बेंच – अज्ञेय पृ0 143
14. पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ– नन्दा देवी –1 अज्ञेय
15. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या– राम स्वरूप चतुर्वेदी पृ0 53–54
16. अज्ञेय रचना संचयन –नई व्यंजना – सं0 डा0 कन्हैया लाल नन्दन पृ0 41
17. कविता के नए प्रतिमान– डॉ नामवर सिंह–पृ0 119
18. छंद है यह फूल – जो कहा नहीं गया – सं0– कृष्णदत्त पालीवाल पृ0– 108
19. वही, चक्रांत शिला– 1 – पृ0 137,138
20. आत्मनेपद – अज्ञेय – पृ0 41
21. नई कविता और अस्तित्वाद – डॉ0 रामविलास शर्मा–पृ0 60
22. छंद है यह फूल–हिरोशिमा–सं0 कृष्णदत्त पालीवाल पृ0 134
23. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ – अज्ञये – पृ0 39
24. छंद है यह फूल– उड़ चल हरिल–सं0 कृष्णदत्त पालीवाल पृ0 33
25. आजकल–अप्रैल 2011– पृ0 55

26. अज्ञेय रचना सचयन–सावन मेघ– सं0 कन्हैया लाल नंदन – पृ0 34
27. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियॉ – डॉ नगेन्द्र – पृ0 117
28. अज्ञेय रचना संचयन– सावन मेघ– पृ034
29. वही (सो रहा हैं झोंप) – पृ0 40
30. अज्ञेय की कविता परम्परा और प्रयोग– रमेश ऋषि कल्प – पृ0– 230–231
31. पहले में सन्नाटा बुनता हूँ– सागर मुद्रा 12– अज्ञेय
32. चिन्ता – आओ एक खेल खेले– अज्ञेय
33. सदानीश – भाग–1 (विश्वप्रिया) पृ0 23
34. छंद है यह फूल– जरा व्याध 1–सं0 कृष्णदत्त पालीवाल– पृ0 182
35. इंद्रधनु रौंदे हुए ये– अज्ञेय– पृ0 31–32
36. सदानीरा भाग– 2– चक्रांत शिला– 17– पृ0 92
37. वही– पृ0 87
38. छंद है यह फूल (मैंने देखा एक बूंद) सं0– कृष्णदत्त पालीवाल–पृ0 130
39. अज्ञेय की कविता परम्परा और प्रयोग – रमेश ऋषिकल्प– पृ0 288
40. इंद्र रौदे हुए ये– मरू और खेत – अज्ञेय– पृ0 23,24
41. अज्ञेय – रमेश चन्द्रशाह – पृ0– 7
42. छंद है यह फूल – धूप– सं0 कृष्णदत्त पालीवाल पृ0– 131